Vol.9 March'16 No.8
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

दुःख-सुख

दुःख क्यों सुख हरता है

–महात्मा चैतन्यमुनि

व्यक्ति क्यों दुःख करता है?
बता सकोगे क्यों हो दुःखी?
दुःख होता किसे है?
शरीर को,
मन को,
या आत्मा को?

शरीर जड़ तत्वों का समूहमात्र है।
तो क्या पृथिवी दुःख का अनुभव करती है?
जल, वायु, अग्नि और आकाश पर
दुःख की घटा बरसती है?
ये नहीं होते दुःखी तो–
इनसे बनी काया क्योंकर दुःखी हो सकती है?

आत्मा तो अमर है
अविनाशी....नित्य....अजर.....अव्यय,
अदाह्य....अच्छेद्य....अशोष्य.... अस्पर्शी
आत्मा दुःखी क्योंकर हो सकती है?

अब रहा मन.....
मन तो एक लहर है
एक भाव है और जड़ भी।
मात्र जड़ लहर भी क्योंकर दुःखी हो सकती है?

शरीर को दुःख नहीं होता
आत्मा को दुःख नहीं होता
और मन को भी दुःख नहीं होता।
तुम हो कौन?

यदि शरीर हो तो शरीर को दुःख
नहीं हो सकता
आत्मा हो तो आत्मा को दुःख
नहीं हो सकता
और यदि मन हो तो–
मन को भी दुःख नहीं हो सकता।

शरीर तो तुम हो ही नहीं सकते
शरीर तुम्हारा है ......तुमसे छूट
भी जाता है...
मन तो मात्र यन्त्र भर है।
शेष बचा आत्मा जो तुम हो।

वेद कहता है तुम–
शुक्रोसि
भ्राजोऽसि
स्वरसि
और ज्योतिरसि।

ऋषि कहते हैं तुम–
ऋतज्ञाः, ऋतपाः, ऋतेजाः और
ऋतबद्ध हो।

स्वयं की पहचान नहीं
तभी दुःख भरमाता है
स्वयं को पहचानो तो–
दुख का अस्तित्व कहाँ रह जाता है...

महादेव, सुन्दरनगर–17440
हि.प्र

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
email:deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 0124-4948597
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar,
Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

Brahmarpan March' 16 Vol. 9 No.8
फाल्गुन-चैत्र 2072 वि.संवत

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

CONTENTS

1. दुःख-सुख 2
-महात्मा चैतन्यमुनि
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
-डॉ. भारत भूषण
4. आचार्य नागार्जुन 8
5. हिन्दुत्व को बचाने वाले श्रीभट्ट 10
-नरेन्द्र सहगल
6. वेदों में पशुहिंसा और गोमांस भक्षण का निषेध 17
-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार
7. बुराई का बदला 20
-स्व. श्री सुदर्शन
8. डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर : एक अनोखा व्यक्तित्व 24
-मनमोहन कुमार आर्य
9. समिधाएँ तीन-मंत्र चार 29
-मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति
10. Royal Monk 33
-Amita Saraogi

संपादकीय

क्या अनेकता में एकता संभव है?

आजादी से पूर्व देश में 'आवाज़ दो हम एक हैं' यह गीत बड़े जोश से गाया जाता था। क्या देश एक हो गया? हमें इस भ्रम में नहीं रहना चाहिए कि हम भारतवासी एक हैं।

कहानी है कि जब पानीपत की लड़ाई में मराठों और मुगलों की सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं और हार-जीतका फैसला होना था तब एक शाम अब्दाली (मुगलों का सेनापति) ने मराठा शिविर में जगह-जगह छोटी-छोटी आगें जलती देखीं। आश्चर्य से उसने पूछा' ये आग कैसी हैं? उसे लोगों ने बताया कि ये अलग-अलग जातियों के सैनिक अपना खाना अलग पका रहे हैं। वे एक दूसरे का छुआ खाना नहीं खाते। यह सुनकर अब्दाली को आश्चर्य हुआ कि ये लोग लड़ने-मरने को तैयार होकर आए हैं और इतनी छुआछूत बरत रहे हैं। अचानक उसके चेहरे पर खुशी की रेखाएँ उभर आईं। उसने आत्मविश्वास के साथ कहा, 'कल मैं इन सबको रणभूमि में काट कर रख दूँगा। जो एक-दूसरे से इतनी नफ़रत करते हैं, वे मेरी संगठित सेना के सामने कैसे टिक पाएँगे। अगले दिन भीषण युद्ध हुआ। मराठों की सेना अब्दाली की सेना से ड्योढ़ी थी, और उनका तोपखाना भी शक्तिशाली था। परन्तु तीसरे पहर से पहले ही वह बुरी तरह हार गई। इससे पता चलता है कि छुआछूत कितना हानिकारक होता है।

इससे हिन्दुओं की विभक्तता का पता चलता है। हिन्दू संकट के समय भी स्वार्थ को छोड़ नहीं पाता।

संगठन की शक्ति - हाथ में पाँच अंगुलियाँ होती हैं। अंगूठा-तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा। जब तक वे अलग-अलग होती हैं- उनमें बहुत कम शक्ति होती है, परन्तु जब वे मिलकर एक मुट्ठी बन जाती हैं तब उनकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। मुक्का बनाने के लिए पाँचों अंगुलियों को मुड़ना-तुड़ना और दबाना पड़ता है। अपने स्वतंत्र अस्तित्व को

दबा देना होता है। कुछ दूसरे की सुननी होती है, कुछ अपनी सुनानी होती है। यही एकता का मंत्र है।

हिन्दी नहीं अंग्रेजी

19 मार्च 2000 को अमेरिका के राष्ट्रपति श्री बिल क्लिंटन भारत आए। संसद के दोनों सदनों की संयुक्त सभा में उनका भाषण हुआ। भाषण की बहुत सराहना हुई। उसके बाद प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने हिन्दी में भाषण दिया। इस पर तमिलनाडु के मुख्यमंत्री श्री करुणानिधि ने आपत्ति की कि प्रधानमंत्री को हिन्दी में भाषण न देकर अंग्रेजी में भाषण देना चाहिए था।

क्या अंग्रेजी हमारी मातृभाषा है?

सन् 1949 में भारतीय संविधान लागू करते समय संविधान सभा ने यह निश्चय किया कि भारत की राजभाषा देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी होगी। साथ ही यह निर्णय भी लिया गया कि 15 वर्ष बाद अर्थात् सन् 1964-65 में हिन्दी अंग्रेजी का स्थान ले लेगी, परन्तु आज 51,52 साल बाद भी अंग्रेजी का प्रभुत्व कायम है।

क्या भारत एक राष्ट्र नहीं?

तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि का यह कथन कि बाजपेयी जी को अपना भाषण अंग्रेजी में देना चाहिए, इस महारोग का लक्षण है कि भारत एक राष्ट्र नहीं है। हमारी राष्ट्रीय एकता ऊपर से थोपी हुई है। जबकि हम अन्दर से बँटे हुए हैं। इसे हम अनेकता में एकता की आड़ में छिपाते हैं।

कुछ समय पूर्व तमिलनाडु में हिन्दी के विरुद्ध उग्र प्रदर्शन हुए। उत्तर भारत में लोगों ने समझा कि यह क्षणिक रोष है धीरे-धीरे शान्त हो जाएगा। तमिल लोग यह समझ जाएँगे कि देश में राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, झारखंड के अधिकांश 45 करोड़ लोग हिन्दी का राष्ट्र-भाषा के रूप में व्यवहार करते हैं। इसके अतिरिक्त हैदराबाद में उर्दू का प्रयोग होता था।

आज हमारा देश विभिन्न क्षेत्रों में बँट गया है। अब हम

भारतीय नहीं हिन्दू नहीं, बंगाली, तमिल, मराठे, गुजराती, असमी, उड़िया, नागा, मिजो बन गए हैं। हम एक भाषा-भाषी बनने को तैयार नहीं। विभिन्न फूलों का गुलदस्ता सज रहा है। यह उपमा शब्दों का भुलावा है। यह उन काँटों का ढेर है, जो एक दूसरे के चुभने को तैयार है।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

हिन्दू-मुस्लिम एकता का ढोल 1920 से पीटा जा रहा है। मुसलमान चिल्ला कर कहते रहे हिन्दू हमारे दुश्मन हैं। हमें इन काफिरों को मुसलमान बनाना है। सैकड़ों साम्प्रदायिक दंगे हुए। मुसलमानों की आबादी बढ़कर 17 करोड़ हो गई। पाकिस्तान और बांग्लादेश हिन्दू विहीन हो गए। काश्मीर से भी पंडितों को खदेड़ दिया गया। भारत के कई प्रदेश मुस्लिम बहुल हो गए हैं। 2 करोड़ बांग्लादेशी भी यहाँ आ घुसे हैं। इतने पर भी हम हिन्दू-मुस्लिम एकता का भ्रम पाले हुए हैं। हम सच्चाई को देखना नहीं चाहते।

एकता का मूलमंत्र- एकता का मूल मंत्र है-**'संगच्छध्वं, संवदध्वं, संवो मनांसि जानताम्'**

साथ मिलकर बोलो, साथ चलो, सबके मन एक समान हों अर्थात् हमारा रहन-सहन, खानपान, वेशभूषा हमारी भाषा एक हो। परन्तु हम भारतीय के रूप में एक नहीं हो पाए।

स्वतंत्रता के बाद संसद में एक पार्टी की सरकार होती थी। दूसरे दल विपक्ष में रहते थे। विपक्ष चाहे कितनी आलोचना करे बात सत्तारुढ़ दल की चलती थी। सरकार में एकता होती थी परन्तु ग्यारहवीं लोकसभा के बाद स्थिति बदल गई। अब गठबंधन सरकारों का युग आ गया। वे शोर-शराबा मचा कर संसद को चलने ही नहीं देते।

यदि हमें राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना है तो हमें 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' का पाठ याद रखना होगा। एक भाषा, एक वेशभूषा, एक लक्ष्य/केवल भाषा और भूषा ही नहीं, मन भी एक होने चाहिए, तभी देश का कल्याण होगा, देश में उन्नति होगी।

सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-98)

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

अब सूत्रकार अगले सूत्र में महत् आदि की कार्यता पर अन्य प्रकार से प्रकाश डालते हैं। सूत्र है-

तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा।।98।।

अर्थ- (तद्धाने) उसके हान (न मानने) में (प्रकृतिः) वह प्रकृति है (पुरुषों वा) अथवा पुरुष है।

यदि महत् आदि को कार्य न माना जाए तो या तो उन्हें प्रकृति माना जाए या पुरुष। क्योंकि ये दो तत्व ही अकार्य रूप हैं। यदि महत् आदि अकार्य होने से परिणामी तत्व हैं तो वे प्रकृति हो सकते हैं। यदि अपरिणामी है तो पुरुष होंगे। परन्तु मूल उपादान प्रकृति की जो स्थिति है वह महत् आदि की नहीं है, इसलिए उन्हें मूल प्रकृति कहना कठिन है। उन्हें पुरुष भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पुरुष चेतन है और महत् आदि सभी तत्व अचेतन हैं। अतः उन्हें न तो प्रकृति और न ही पुरुष माना जा सकता है। इन दोनों के अलावा जितने पदार्थ हैं सब अनित्य हैं। इसलिए महत् आदि पदार्थ अनित्य अर्थात् कार्य हैं, यह निश्चित होता है।।98।।

निराकार ईश्वर की प्राप्ति में प्रतीक और प्रतिमा दोनों ही साधन नहीं हो सकते हैं, क्योंकि ईश्वर की एकदेशीय अवधि नहीं है, वह सर्वव्यापक है। ऐसी स्थिति में मूर्ति को ईश्वर प्राप्ति का साधन नहीं माना जा सकता।

-आचार्य सूर्यादेवी चतुर्वेदी

आचार्य नागार्जुन

प्राचीन भारत ने गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्रों में नए-नए संशोधन करके विश्व की ज्ञान सम्पदा में अभिवृद्धि कर उसे समृद्ध बनाया है। इतना ही नहीं अपितु रसायन शास्त्र जैसे अत्यन्त आधुनिक क्षेत्र में भी अभूतपूर्व योगदान प्रदान किया है। नागार्जुन ऐसे ही एक प्रसिद्ध रसायन शास्त्री थे। छत्तीसगढ़ के रायपुर जिले में पैरी नदी के तट पर बसे बालूका ग्राम में नागार्जुन का जन्म हुआ था। सतपुड़ा की सुरम्य पर्वत श्रृंखलाओं की तलहटी में स्थित यह बालूका ग्राम नागार्जुन की जन्मभूमि था। आपके पिता कौंडिल्य गौत्र में जन्मे दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे। वे अत्यन्त सात्विक शिवभक्त एवं कर्मकांडी सज्जन थे।

बालक नागार्जुन जन्म से ही अत्यन्त प्रतिभाशाली था। इसलिए अतीव शीघ्रता से आपने वेद-वेदांगों का अध्ययन पूर्ण कर लिया। बड़े होकर आप श्रीपुर-जो वर्तमान में सिरपुर नामक गाँव के विद्यालय में अध्ययन करने गए थे। यह बात वि.सं. 57 अर्थात् ईसा की प्रथम शताब्दि की है। उस समय सिरपुर महाकौशल की राजधानी थी। धन-धान्य से समृद्ध इस नगर में एक विश्वविद्यालय भी था, जहाँ देश-विदेश के विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे। नागार्जुन ने यहाँ बौद्ध धर्म का अध्ययन किया और बौद्ध धर्म की दीक्षा भी ली। अपनी प्रभावशाली प्रतिभा के कारण इसी विश्वविद्यालय में अध्ययन पूर्ण करने के बाद अध्यापक के रूप में नागार्जुन अध्यापन कार्य करने लगे।

इसी समय महाकौशल में भयंकर अकाल पड़ा। बारह वर्षों तक वर्षा न होने के कारण प्रजा भूख से मरने लगी। तब यहाँ के राजा आर्यदेव ने नागार्जुन से इस समस्या को हल करने के लिए सुझाव माँगा। क्योंकि नागार्जुन रसायनशास्त्री थे, आपने इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना प्रारम्भ

किया। आप कुछ दिनों के लिए एकान्तवास में चले गए। एकान्तवास के कुछ दिनों पश्चात् आपने राजा को संदेश भिजवाया कि उनके राज्य में जितना ताँबा इकट्ठा हो सकता है उसे वे आश्रम में भेज दें। राजा ने नागार्जुन के संदेशानुसार कार्य किया। कुछ दिनों पश्चात् नागार्जुन ने जब राजा को आश्रम में बुलाया तब आपके समक्ष सोने का विशाल ढेर जमा हो गया था। नागार्जुन ने राजा को कहा कि वे इस सोने को ले जाकर अन्य देशों में बेचकर अन्न खरीदकर प्रजा में बाँटने का कार्य करें। इस प्रकार नागार्जुन ने रसायनशास्त्र की अपनी विशेषज्ञता के आधार पर भीषण अकाल की समस्या का समाधान किया।

यह तो निश्चित है कि नागार्जुन एक महान वैज्ञानिक थे। आपने अनेक निम्न श्रेणी के (अल्पमूल्य वाली) धातुओं को सोने में परिवर्तन करने की पद्धति का अविष्कार किया था। आपके रचे हुए 'रसहृदय' नामक ग्रंथ में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है।

नागार्जुन ने आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत द्वारा रचित 'सुश्रुतसंहिता' का संपादन कर उसमें नए अध्याय बढ़ाए थे। आपके रसायन शास्त्र के क्षेत्र में रचित मुख्य ग्रंथ इस प्रकार हैं– 1. रस हृदय 2. रस रत्नाकर 3. रसेन्द्र मंगल। चिकित्सा के क्षेत्र में भी आपका योगदान उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र में आपके मुख्य ग्रंथ इस प्रकार हैं–1. आरोग्य मंजरी 2. कक्ष कन्नतंत्र, 3. योगसार, 4. योगाष्टक।

आपने पारे का आविष्कार किया। उसमें से भस्म बनाने की पद्धति को भी ढूँढ लिया। आप मानते थे कि धातुओं की भस्म का यदि सेवन किया जाए तो शरीर सदा रोगमुक्त रह सकता है। नागार्जुन एक महान दार्शनिक भी थे। आपका दर्शन शून्यवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आपने वैदिक और बौद्ध दर्शन में समन्वय करने का भी प्रयास किया।

हिन्दुत्व को बचाने वाले श्रीभट्ट

-नरेन्द्र सहगल

[निर्दयी, अत्याचारी और हिन्दू संहारक सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन के दूसरे पुत्र उदारवादी सुल्तान जैन-उल-आब्दीन और प्रसिद्ध वैद्य पण्डित श्री भट्ट के प्रयासों से कश्मीर का प्राचीन वैभव फिर लौट आया। मंदिरों का पुनर्निर्माण हुआ। गोहत्या रोक दी गई। संस्कृत केन्द्र पुनः कार्य करने लगे। हिन्दुओं पर जजिया कर समाप्त हो गया।]

कश्मीर प्रदेश की अन्तिम हिन्दू सम्राज्ञी कोटारानी के बलिदान के बाद सत्ता पर काबिज हुए पहले मुस्लिम सुल्तान शाहमीर ने इस आध्यात्मिक धरती पर कट्टर इस्लाम का झंडा गाड़ने के लिए हिन्दुओं के बलात् मतान्तरण का अमानवीय अध्याय शुरू कर दिया। इसी कालखण्ड में हिन्द संहारक मुस्लिम सुल्तान सिकन्दर बुतशिकन (मूर्तिभंजक) उसके बेटे अत्याचारी अलीशाह, राष्ट्रद्रोही सैफुद्दीन (मतान्तरित हिन्दू नेता सुहा भट्ट) और मजहबी लिबास में क्रूर सैयदों के खूनी मतान्तरण अभियान के परिणामस्वरूप कश्मीर प्रदेश लगभग हिन्दू-विहीन हो गया। मन्दिर, मठ, विश्वविद्यालय और ज्ञान के भण्डार पुस्तकालय सब कुछ खण्डहरों में बदल गए। परन्तु ऐसे गहन अन्धकार में भी प्रकाश का एक देदीप्यमान दीपक जल उठा।

उदारवादी सुल्तान जैनूल

सन् 1420ई. में सिकन्दर बुतशिकन का दूसरा पुत्र सुल्तान जैन-उल-आब्दीन कश्मीर के तख्त पर बैठा। उसने सत्ता पर आसीन होते ही अपने पिता के क्रूर कारनामों और पापों का मानों प्रायश्चित करने का निश्चय किया। इतिहासवेत्ता पण्डित श्रीवर ने राजतरंगिणी में क्रूरता की हद पार करने वाले

सुल्तानों के बाद इस उदार एवं सहनशील सुल्तान के शासनकाल का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है, "जैसे रेगिस्तान की गर्मी के विदा हो जाने के बाद किसी ने चन्दन का शीतल लेप लगा दिया हो।'

जैन-उल-आब्दीन, जिसका छोटा नाम जैनुल प्रसिद्ध हुआ, ने कश्मीर को फिर से इसके प्राचीन वैभव की ओर मोड़ने का भरसक प्रयास किया। जो कश्मीरी पण्डित घाटी छोड़कर भारत के अन्य प्रदेशों में बिखर गए थे, उन्हें वापस बुलाया गया। प्रजा के कल्याण के लिए विकास के अनेक प्रकल्प प्रारम्भ किए गए। सभी हिन्दू ग्रन्थों का फारसी में अनुवाद करवाया गया। सुल्तान के हृदय में समस्त मानवता के प्रति यह सहानुभूति जागृत करने का कार्य किया था एक वैद्य पण्डित श्रीभट्ट ने।

युगद्रष्टा पण्डित श्रीभट्ट

महान वैद्य पण्डित श्रीभट्ट के परिचय के बिना कश्मीर के इस अल्प समय के वैभवकाल का वर्णन अधूरा रहेगा। जैनुल को कश्मीर के सिंहासन पर बैठे अभी दो ही वर्ष हुए थे कि उसके सीने पर एक खतरनाक़ किस्म का फोड़ा (कैंसर) निकल आया। अनेक हकीमों ने इलाज किया। मध्य एशिया के कई नामी मुस्लिम हकीम बुलाए गए। परन्तु फोड़े का आकार बढ़ता ही गया।

सुल्तान जैनुल ने सुना था कि कश्मीर में कोई हिन्दू वैद्य हैं जो कैंसर के फोड़े को काटकर (आपरेशन से) ठीक कर देने की कला के विशेषज्ञ माने जाते हैं। सुल्तान के आदेश से ऐसे वैद्यों की तलाश शुरू हुई। परन्तु क्रूर सुल्तानों द्वारा चलाए गए बलात् मतान्तरण के जुल्मों से कश्मीर इस तरह की हिन्दू प्रतिभाओं से शून्य हो चुका था। जोनाराज कृत राजतरंगिणी के अनुसार 'सुल्तान के कर्मचारियों ने अन्ततः

विष का प्रभाव दूर करने वाले वैद्य श्रीभट्ट को ढूँढ लिया। श्रीभट्ट ने आने में जानबूझकर देर कर दी। जब वह पहुँचा तो राजा ने उसका उत्साह बढ़ाया। श्रीभट्ट ने राजा के फोड़े को पूर्णतया ठीक कर दिया।

राष्ट्रहित की चिन्ता सर्वोपरि

सुल्तान का इलाज करते हुए पण्डित श्रीभट्ट भयभीत था कि अगर सुल्तान स्वस्थ न हुआ तो उसके क्रोध के कारण कहीं मृत्युदण्ड ही न भुगतना पड़े। राजतरंगिणी में लिखा है 'यद्यपि वैद्य श्रीभट्ट फोड़े का उपचार करने में बड़े ही पारंगत थे परन्तु उन्होंने सुल्तान का इलाज सम्भलकर और झिझक के साथ शुरू किया। जिस प्रकार आग से जला हुआ व्यक्ति आग के समान चमकते हुए हीरे को भी बहुत समय के बाद छूने का साहस करता है' (राजतरंगिणी 813)। जब सुल्तान पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया तो उसने पण्डित श्रीभट्ट को बहुत बड़ा पुरस्कार देकर हीरे जवाहरात से मालामाल करना चाहा। श्रीभट्ट ने किसी भी प्रकार का पुरस्कार लेना पसन्द नहीं किया। उसने अपनी व्यक्तिगत सुख-सुविधा की चिन्ता नहीं की। इस ब्राह्मण ने अपने प्रिय कश्मीर के सुख और समृद्धि को अधिमान दिया। श्रीभट्ट का यह व्यवहार सुल्तान के लिए एक अनोखा अनुभव था। धन-वैभव को ठुकराकर राष्ट्र के हित की चिन्ता करने वाले पण्डित श्रीभट्ट ने सुल्तान को उदारवादी मानवीय दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित कर दिया। ऐसे हिन्दू संस्कृति की शरण में आ गया सुल्तान जैन-उल-आब्दीन। श्रीभट्ट के राष्ट्र समर्पित व्यवहार के कारण सुल्तान के जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया। मजहबी उन्माद समाप्त हो गया।

हिन्दू समाज की पुनर्प्रतिष्ठा

सुल्तान जैनुल के मन में जाग्रत इस उदारता का लाभ

पण्डित श्रीभट्ट ने कश्मीर और हिन्दू धर्म के लिए उठाया। सुल्तान के आग्रह पर श्रीभट्ट ने उसके सम्मुख सात प्रस्ताव कश्मीर की भलाई के लिए रखे।

बिना किसी कारण मात्र धार्मिक विद्वेष के आधार पर हिन्दुओं का कत्लेआम तुरन्त समाप्त किया जाए और बिना जाँच-पड़ताल के किसी भी बेकसूर को सजा न दी जाए। पूर्व के सुल्तान सिकन्दर के समय जिन हिन्दू मन्दिरों को तोड़ा गया था उन्हें फिर से बनवाया जाए। इस्लाम में बलात् मतान्तरित किए गए हिन्दुओं को पुनः अपने पूर्वजों के धर्म में लौटने की अनुमति दी जाए। जो कश्मीरी हिन्दू भय की वजह से कश्मीर छोड़कर अन्य प्रदेशों में जाकर दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं उनकी सम्मानजनक एवं सुरक्षित घरवापसी की व्यवस्था की जाए।

कश्मीर में संस्कृत पाठशालाओं को फिर से प्रारंभ करके हिन्दू छात्रों को उन्नति करने की सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। हिन्दुओं पर लगे जजिया (मजहबी टैक्स) को समाप्त करके उन्हें समानता एवं न्याय के सारे अधिकार दिए जाएँ।

हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं की कद्र करते हुए एकतरफा गोवध पर तुरन्त और पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध लगाया जाए। हिन्दुओं के यज्ञ इत्यादि धार्मिक रीति-रिवाजों, यज्ञोपवीत धारण समारोहों और मन्दिरों में पूजा पर लगे प्रतिबन्ध हटा लिए जाएँ।

कट्टरपंथी सुल्तानों, मुल्ला-मौलवियों और जिहादियों द्वारा जलाए गए पुस्तकालयों, विद्यालयों और पवित्र स्थलों का जीर्णोद्धार किया जाए।

हिन्दुत्वनिष्ठ मुस्लिम सुल्तान

इतिहास साक्षी है कि इस राष्ट्रभक्त श्रीभट्ट के सभी प्रस्ताव सुल्तान जैनुल ने तुरन्त स्वीकार करके उन पर अपनी

देखरेख में कार्रवाई शुरू करवा दी। कश्मीर से पलायन कर चुके पण्डितों के परिवार फिर अपने घरों में आकर बस गए। भागे हुए संस्कृत विद्वान लौट आए। सुल्तान की ओर से विद्वानों एवं छात्रों को धन की सुविधा दी गई और संस्कृत केन्द्र पुनः खुल गए। सिकन्दर बुतशिकन के समय हिन्दुओं की लूटी गई सम्पत्ति उन्हें वापस लौटाई गई। संस्कृत फिर से कश्मीर की राजभाषा बना दी गई। सुल्तान जैनुल की हिन्दू धर्म पर आस्था जमी। वह हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने लगा। सुल्तान के कट्टरपंथी और जिहादी सैयदों द्वारा हिन्दुओं का उत्पीड़न और मतान्तरण करने के लिए बनाए गए सभी संगठनों को गैरकानूनी घोषित करके समाप्त करवा दिया। मुस्लिम इतिहासकार मुहम्मद दीनफाक ने अपनी पुस्तक 'शबाबे कश्मीर' में श्रीभट्ट का वर्णन करते हुए लिखा है। 'राजा को स्वस्थ करने के बाद पुरस्कार न लेने पर, राज्यस्तर पर पण्डित श्रीभट्ट की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उसे राजवैद्य और सुल्तान के दरबार में अफसर उल अताब (स्वास्थ्य विभागाध्यक्ष) नियुक्त कर दिया गया। श्रीभट्ट ने अपना यह रुतबा कश्मीरियों के पुनर्वास के लिए इस्तेमाल किया। वह अमन का अलंबरदार था।'

अल्प समय का वैभवकाल

प्रसिद्ध इतिहासकार अबुल फ़ज़ल ने अपनी पुस्तक 'आईन-ए-अकबरी' में श्रीभट्ट के अनूठे व्यक्तित्व का परिचय इस तरह दिया है। 'कश्मीर के स्वर्णिम इतिहास में विशेषतया मध्यकालीन इतिहास के सन्दर्भ में जिस गौरव के साथ सुल्तान जैन-उल-आब्दीन का यश चिरविस्मरणीय बना, अगर श्रीभट्ट का समागम उसे नहीं मिलता तो शायद वह भी इतिहास की उसी धारा में बह जाता जिस कलंकित

धारा में उसके बाप दादा बह गए थे। 'जोनराज ने राजतरंगिणी में लिखा है' सुल्तान जैनुल की पंथनिरपेक्ष तपस्या, श्रीभट्ट की सफल नीति और प्रजा जनों के भाग्य के फलस्वरूप इस युग के प्रशासन में कहीं कोई विघ्न नहीं पड़ा।'

श्रीभट्ट के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप जब हजारों विस्थापित हिन्दू परिवार कश्मीर में आकर बसे तो उनके निवास, आजीविका आदि का प्रश्न मुँह बाए खड़ा हो गया। अतः श्रीभट्ट के मार्गदर्शन में, शासकीय अनुमति और योजना के अन्तर्गत प्रशासन में भिन्न-भिन्न स्थानों पर इन्हें नियुक्त कर दिया गया। इन्हें बसाना, इनकी पारिवारिक व्यवस्थाओं/जरूरतों को समयानुसार तत्कालीन शासन व्यवस्था के साथ जोड़ना और इनकी जातिगत पहचान हिन्दुत्वनिष्ठ कश्मीरियत को सुरक्षित करने जैसे अनेक कठिनतम कार्यों को पण्डित श्रीभट्ट ने सुल्तान की मदद से सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया।

वर्गविहीन समाज की रचना

इस कालखण्ड में कश्मीर में अनेक जातियाँ, उपजातियाँ, गोत्र और वर्ण इत्यादि थे। मुलसमान शासकों के अत्याचारों से कश्मीर की यह समाज रचना निरर्थक और अव्यावहारिक हो गई थी। बार-बार कश्मीर से पलायन करके बाहर जाकर बिखर जाना और फिर अत्यन्त दयनीय परिस्थितियों में वापस लौटने से हुई इस विनष्ट वर्ण व्यवस्था को नया रूप देने की आवश्यकता थी। ऐसी स्थिति में पण्डित श्रीभट्ट ने सबको एक ही वर्ण (पण्डित) में परिणत कर दिया।

इस तरह एक वैज्ञानिक समाजशास्त्री की भूमिका निभाते हुए श्रीभट्ट ने पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही वर्णविहीन समाज व्यवस्था की स्थापना कर दी थी। आश्चर्य तो यह

है कि जिस क्रान्तिकारी सुधार के स्वप्न को शतकों के बाद भक्ति आन्दोलन, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज तथा अन्य कई सामाजिक संस्थाओं ने साकार करने का बीड़ा उठाया, उसको युगद्रष्टा पण्डित श्रीभट्ट ने सन् 1420-22 ई. में ही त्रिकालद्रष्टा की तरह भाँपकर कश्मीर की धरती पर साकार कर दिया था। आज कश्मीर के सभी हिन्दुओं को पण्डित कहा जाता है।

उदारवादिता की अपार शक्ति

मध्यकालीन कश्मीर में हिन्दू संस्कृति के इस निर्भीक प्रहरी पण्डित श्रीभट्ट का जीवन भारतीय इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ तो है ही, यह वर्तमान एवं भविष्य में कट्टरतावादी मुस्लिम मानसिकता को राष्ट्र पथ पर लाने हेतु कर्म एवं व्यवहार के लिए दिशा-निर्देश भी हैं। परन्तु यह अत्यन्त खेद की बात है कि आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि इस प्रकार के महान व्यक्तित्व पर नहीं टिकी।

श्रीभट्ट ने घोर अत्याचारी, निर्दयी और हिन्दुत्व/भारतीयता की जड़ें काटने वाली कट्टरवादी विचारधारा को कश्मीर में तलवार के जोर पर थोपने वाले सुल्तान के परिवार में उत्पन्न मुस्लिम शासक को भी राष्ट्रवादी और हिन्दुत्वनिष्ठ बना दिया। अपनी प्रतिभा और कार्यक्षमता के बल पर पण्डित श्रीभट्ट युगधारा को भी बदल डालने की सामर्थ्य रखते थे। जोनराज ने राजतरंगिणी में लिखा है 'सुल्तान जैन-उल-आब्दीन श्रीभट्ट की प्रत्येक बात, सुझाव और योजना को उदारवादी प्रथा के रूप में सुनते, देखते और तुरन्त कार्यान्वित करने के लिए तत्पर रहते।' अतः पण्डित श्रीभट्ट भारतीय इतिहास के एक ऐसे युगपुरुष थे, जिन्होंने अपने विराट व्यक्तित्व के असंख्य गुणों के कारण पूर्णतया हतोत्साहित हो चुके विस्थापित कश्मीरी हिन्दू समाज को फिर से कश्मीर की भूमि से जोड़ा।

वेदों में पशु हिंसा और गोमांस भक्षण का निषेध

-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

गतांक से आगे-

अश्वमेघ, गोमेध, पुरुषमेध, अजमेध आदि में मेध् शब्द को देखकर यज्ञों में पशु हिंसा के विधान का भ्रम हुआ लगता है। **मेधृ** धातु के **मेधासंगमनयोर्हिंसायां च** अर्थात् मेधा या शुद्ध बुद्धि को बढ़ाना, लोगों में एकता व प्रेम को बढ़ाना और हिंसा-ये तीन अर्थ होते हैं। जबकि प्रायः लोग इसका केवल 'हिंसा' अर्थ समझ लेते हैं जो अन्य पुष्ट प्रमाणों के होते हुए एकदम असंगत है। **पुरुषमेध** और **नृयज्ञ** दोनों ही पयार्यवाचक शब्द हैं। मनुस्मृति में **नृयज्ञ** की व्याख्या **"नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्"** (मनु. 3.70) की है अर्थात् नृयज्ञ का अर्थ विद्वानों विशेषतः अतिथियों की पूजा है। यदि मेधृधातु का संगमनार्थ लें तो मनुष्यों को उत्तम कार्यों के लिए संगठित करना, उनमें प्रेम और एकता बढ़ाना-नृयज्ञ या पुरुषमेध है। इसी प्रकार अश्वमेध, अजमेध आदि के भी वास्तविक अर्थ यज्ञ में बलि देने से भिन्न हैं। शतपथ (13.1.6) में कहा है-**'राष्ट्रं वै अश्वमेधः'** अर्थात् राष्ट्र का अच्छी प्रकार संचालन करना अश्वमेध है। 'अज' का अर्थ घान्य विशेष है जिसे यज्ञ की सामग्री में डालकर आहुति दी जाती है। महाभारत के शांतिपर्व (अ.337) में लिखा है-

अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यम्, इति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज संज्ञानि बीजानि, छागान्नो हन्तुमर्हथ।।
नैषधर्मः सतां देवाः, यत्र बध्येत् वै पशुः।।

अर्थात् अजों (धान्य विशेष) से हवन करना चाहिए, बकरियों, बकरों का वध करना उचित नहीं। पशु हिंसा सज्जनों का धर्म नहीं है। शांति पर्व में आगे (263.6) में लिखा है-

सूरा मत्स्याः पशोर्मांसम्, आसवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञै नैतद्वेदेषु विद्यते।।
इससे स्पष्ट है कि यज्ञों में पशु हिंसा धूर्तों ने चलाई है, इसका वेदों में कहीं भी विधान नहीं है। इसी के समर्थन में एक और उद्धरण देखिए-शतपथ ब्राह्मण (3.2.21) में लिखा है-
"स धेन्वै चानुडुहश्च नाश्नीयात् धेन्वनुडुहौ वा इदं सर्वं बिभ्रतः तस्मात् धेन्वनुडुहौनाश्नीयात्।।
इसके अनुसार गाय-बैल का मांस कभी न खाना चाहिए क्योंकि गाय और बैल तो इस पृथ्वी को धारण करते हैं। मांस भक्षण के संबंध में इस भ्रांति का कारण पाश्चात्य एवं आधुनिक भारतीय विद्वानों द्वारा वेदार्थ और उसके संदर्भ को स्पष्ट न समझना है। एक उदाहरण हठयोग प्रदीपिका का प्रस्तुत है-
गोमांस भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः।
प्रथम दृष्ट्या इसे देखकर सामान्य पाठक चौंक जाएगा लेकिन इसके बाद के श्लोक को देखकर उसकी शंका का समाधान हो जाता है। इस श्लोक का जो सामान्य अर्थ प्रतीत होता है। वह यह है।
मनुष्य को हर रोज गौ मांस का भक्षण करना चाहिए और मद्यपान करना चाहिए परन्तु इससे अगले श्लोक को पढ़कर सब भ्रांति नष्ट हो जाती है-
गोशब्देनोदिताजिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांस भक्षणं तत् तु महापातकनाशनम्।।
अर्थात् पूर्व श्लोक में गो शब्द का प्रयोग जिह्वा के लिए हुआ है और उसके तालुभाग में प्रवेश को गोमांस भक्षण कहा है जिससे महान् पातकों का भी नाश हो जाता है। यह एक योग की क्रिया है। जिससे व्यक्ति अपने काम, क्रोध, राग-द्वेष आदि विकारों पर नियंत्रण कर सकता है। इसके द्वारा मनुष्य को

महापाप से छुटकारा मिलता है। इसी प्रकार विभिन्न धान्यों का मांस के संदर्भ में अर्थ करने से पाश्चात्य विद्वानों ने वेदमंत्रों के अर्थों को भ्रष्ट कर दिया, देखिए अथर्ववेद के मंत्र में कहा है-

अश्वाः कणाः गावस्तण्डुला मशकस्तुषा।
श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम्।।

यहाँ चावल के कणों को अश्व, तण्डुलों को गाय, भूसी को मशक कहा है। इन धान्यों के कृष्ण भाग को मांस और लाल भाग को रुधिर कहा गया है।

वेदों में पशुओं की रक्षा और पशुपालन का विधान और पशु हिंसा का निषेध है।

वेदों में स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से पशुओं की रक्षा और पशु हिंसा का निषेध किया गया है।

निम्नलिखित मंत्रांशो को देखिए।

पशून् पाहि! गां मा हिंसीः! अजां मा हिंसीः। अविं मा हिंसीः।

इमां मा हिंसी द्विपादं पशुं मा हिंसी एक शफं पशुं मा हिंस्यात् सर्वभूतानि।।

अर्थात् पशुओं की रक्षा करो, गाय, बकरी, भेड़, द्विपाद (मनुष्यों) और पशुओं की तथा एक शफ वाले अश्वादि किसी भी प्राणी की हिंसा मत करो। वेदों में हिंसा कार्य में, विशेषतः गोहत्या में संलिप्त लोगों को कठोर दण्ड देने का भी विधान है-

अंतकाय-गोधातकम्-गो हत्या करने वाले को मृत्युदण्ड दिया जाए। वेद में यह भी कहा है कि गाय, घोड़े या मानव की हत्या करने वाले को सीसे की गोली से बींध दो। ऐसे सैकड़ों उदाहरण वेदों में भरे पड़े हैं।

अतः स्पष्ट है कि वेदों में न तो गाय आदि पशुओं की हिंसा का विधान है और न ही यज्ञों में पशुबलि का उल्लेख है।

बुराई का बदला

-स्व. श्री सुदर्शन

(यह कहानी नहीं सच्ची घटना है)

एक छोटे से रेल स्टेशन पर शाम के समय एक स्त्री उतरी। उसके आभूषण देखकर स्टेशन-मास्टर के मुँह में पानी भर आया। वह सोचने लगा कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे ये आभूषण मेरे हाथ आ जाएँ। अब परमात्मा की ओर से क्या हुआ कि उस स्त्री को जहाँ जाना था वह स्थान स्टेशन से लगभग दस-बारह कोस की दूरी पर था। उसने चलने से पहले अपने सम्बन्धियों को पत्र लिख दिया था कि स्टेशन पर घोड़ी भेज देना परन्तु न जाने क्यों कर वह पत्र उन्हें समय पर न मिल सका, इसलिए उन्होंने घोड़ी स्टेशन पर नहीं भेजी। वह स्त्री सोच में थी कि अब क्या करूँ और अपने गाँव किस तरह पहुँचूँ? रात सिर पर आ रही थी, इसलिए और भी अधिक चिन्ता लग रही थी। अन्त में, उसने सोच-सोचकर यही ठीक समझा कि रात उस स्टेशन पर ही काट ली जाए, परन्तु चूँकि वह आभूषणों से लदी हुई थी, इसलिए दिल में डरती थी कि कहीं कोई रात को इन आभूषणों के लालच में उसे मार ही न दे।

इतने में स्टेशन मास्टर की धर्मपत्नी किसी काम से बाहर निकली। उसे देखकर उस स्त्री को विचार आया, क्यों न मैं अपने आभूषण उतारकर और सन्दूक में बन्द करके रात-भर के लिए इनके पास रख दूँ? सवेरे सवारी का प्रबंध हो जाएगा तो लेकर चली जाऊँगी। यह उपाय बहुत ठीक था। उसने आभूषण उतारकर सन्दूक में रखे, उसका ताला बन्द किया और स्टेशन-मास्टर की धर्मपत्नी के पास जाकर बोली, "यदि आप मेरा यह सन्दूक अपने पास रख लें तो बड़ी कृपा होगी। सवेरे ही लेकर चली जाऊँगी।"

स्टेशन-मास्टर की धर्मपत्नी बहुत सुशील और दयालु थी। उसने उत्तर दिया, "बहिन! इस उजाड़ जंगल में तुम बाहर

कहाँ रहोगी? मेरा जी चाहता है कि तुम्हें भी अपने पास ठहरा लूँ। पर क्या करूँ, वे चिड़चिड़े स्वभाव के हैं। बहुत जल्दी गुस्सा हो जाते हैं। इसलिए उनसे डरती हूँ? तुम इस सन्दूक को मेरे पास रख जाओ और रात स्टेशन पर ही काट लो। मैं तुम्हें भोजन वहीं पहुँचा दूँगी।"

उस स्त्री ने स्टेशन-मास्टर की धर्मपत्नी का धन्यवाद किया और सन्दूक वहीं रखकर आप स्टेशन पर जा लेटी, परन्तु यह सब बात स्टेशन-मास्टर को मालूम हो गई और वह तो आप ही यह चाहता था, इसलिए उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न था। उसने काँटेवाले को अपने साथ मिला लिया और निश्चय किया कि काँटेवाला रात को उसे मारकर लाइन पर फेंक दे। दूसरे दिन रिपोर्ट कर दी जाएगी कि एक स्त्री रेल के नीचे आकर मर गई है। काँटेवाला भी लालच में फँस गया और यह पाप करने को तैयार हो गया।

जब रात के दस बज गए तो वह स्त्री एक बेंच पर लेटकर सोने की तैयारी करने लगी। परन्तु दिल में डर रही थी। इतने में एक बीस साल के लड़के ने पूछा, "तू कौन है?" वह स्त्री डरकर खड़ी हो गई और धीरे-धीरे बोली, "मैं मुसाफिर हूँ।"

"यहाँ क्यों पड़ी है?"

"मेरा गाँव दूर है, सवेरे चली जाऊँगी।"

"यह कोई सराय नहीं है। स्टेशन-मास्टर देख लेगा तो धक्के देकर निकाल देगा। अच्छा यही है कि तू आप ही यहाँ से उठकर कहीं और चली जा।"

उस स्त्री ने हाथ जोड़कर कहा, "बेटा, केवल एक रात की बात है। मुझे यहीं पड़ा रहने दो। सवेरा होते ही चली जाऊँगी।"

इस पर उस लड़के ने बिगड़कर उत्तर दिया, "उठती है या लगाऊँ दो जूते! टर-टर करती जाती है! नरमी से मानती ही नहीं!"

अब तो वह स्त्री कुछ बोल न सकी और उठकर वृक्षों के नीचे जा लेटी। परन्तु सारी रात बेचारी को नींद न आई। उस बेंच पर वह लड़का आप लेटकर सो गया। वह स्टेशन-मास्टर का लड़का था।

जब रात के दो बज गए तो काँटेवाला छुरा लिए स्टेशन पर आया और उस जगह पहुँचा जहाँ पहले वह स्त्री और अब स्टेशन-मास्टर का लड़का सोया हुआ था। तब उसने धीरे से कान लगाकर सुना। वह सो रहा था। उसने धीरे से उसकी छाती नंगी की, फिर छुरे वाला हाथ उठाया, फिर कुछ सोचा। बुराई और भलाई में युद्ध होने लगा, फिर कुछ निश्चय किया और आगे बढ़कर वह छुरा उसकी छाती में भोंक दिया। बहुत देर तक दोनों में मुठभेड़ होती रही, परन्तु कांटेवाले ने जगह-जगह छुरा मारकर अन्त में उसका दम निकाल दिया; और उसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े करके रेल की लाइन पर फेंक दिए जिससे कि उसे मार देने का दोष उसके सिर पर न लगे।

सवेरा हुआ, स्टेशन-मास्टर प्रसन्न हुआ कि इतने आभूषण मुफ्त ही में हाथ लग गए। इतने में वह स्त्री सामने आती दिखाई दी। स्टेशन-मास्टर का खून सूख गया। उसने काँटेवाले को बुलाकर पूछा, "तुमने रात उसे मारा नहीं?"

"मारा क्यों नहीं? मार दिया।"

"परन्तु वह जिन्दा है।"

"कहाँ?"

"वह अपना सन्दूक लेने के लिए मेरे मकान में गई है।"

काँटेवाला हैरान होकर लाइन की ओर दौड़ा; स्टेशन-मास्टर भी साथ-साथ था। काँटेवाले ने छुरे मार-मार कर लाश की शक्ल बिगाड़ दी थी, परन्तु उसका एक हाथ नहीं बिगड़ा था। उसकी उंगली में अंगूठी देखकर स्टेशन-मास्टर ने पहचान लिया कि यह तो मेरा बेटा है। इसका उसे इतना शोक हुआ और उसके दिल को इतना धक्का लगा कि वह

वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा।

कहते हैं कि जब बुरे दिन आते हैं तो सामान भी ऐसे ही बन जाते हैं। उस दिन किसी मुकद्दमे की खोज के लिए पुलिस भी वहीं मौजूद थी। उनमें से एक आदमी ने स्टेशन-मास्टर को बेहोश होते देख लिया और सहायता के लिए आगे बढ़ा। स्टेशन-मास्टर बेहोशी में बार-बार कह रहा था। "शोक! मैंने आभूषणों के लोभ में अपने बेटे को मरवा दिया।" यह सुनकर उस पुलिस वाले को सन्देह हो गया। उसने स्टेशन-मास्टर को पकड़ लिया। बाद में मुकद्दमा कचहरी में गया। दोष सिद्ध हुआ और स्टेशन-मास्टर और कांटेवाले-दोनों को फाँसी की सजा मिली।

मातृभाषा का प्रयोग

बात उन दिनों की है, जब महात्मा गाँधी अंग्रेजों से देश को आजाद कराने के लिए विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष कर रहे थे। इस कड़ी में जनसंपर्क कर लोगों को अपने अभियान में शामिल करना उनका लक्ष्य था। गाँधीजी कई शहरों व गाँवों में जाते थे और लोगों को राष्ट्रहितकारी कार्यों से जुड़ने के लिए प्रेरित करते थे। इसी सिलसिले में एक बार गाँधीजी दिल्ली के किसी मोहल्ले में रुके हुए थे। एक दिन वे अपने कमरे में कोई आवश्यक कार्य कर रहे थे कि उन्हें किसी की बातचीत सुनाई दी। बातचीत एक लड़के और लड़की के बीच हो रही थी और अंग्रेजी में हो रही थी। गाँधीजी ने दोनों को भीतर बुलाकर पूछा-आप कौन हैं? दोनों अचकचा गए क्योंकि गाँधीजी उन्हें भलाभाँति जानते थे। गाँधी जी ने फिर पूछा-बोलो आप कौन हो? दोनों ने कहा-बापू हम सगे भाई-बहन हैं। गाँधीजी ने अगला प्रश्न किया-तुम कहाँ के रहने वाले हो? उत्तर मिला-पंजाब के। गाँधीजी बोले, तुम पंजाबी और हिन्दी दोनों भाषाएँ जानते हो, फिर बातचीत में इनका प्रयोग क्यों नहीं करते? अंग्रेजी के गुलाम बनकर अपने देश की भाषाओं पर तुम अत्याचार कर रहे हो। अंग्रेजी को मैं बुरी भाषा नहीं मानता, किंतु उसके लिए मातृभाषा का तिरस्कार करना उचित नहीं है। ऐसे लोगों से अंग्रेजी में जरूर बात करो जो हमारी भाषाएँ नहीं समझते। विश्व में सभी भाषाएँ सम्मान के योग्य हैं, किंतु स्वदेश में मातृभाषा का ही प्रयोग करना चाहिए। राष्ट्र के प्रति निष्ठा व्यक्त करने का यह एक माध्यम है। दोनों ने बापू से क्षमा माँगी।

-लखविन्दर सिंह

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर : एक अनोखा व्यक्तित्व

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर की 125वीं जयन्ती 14 अप्रैल सन् 2016 को है। वे भारत के पहले कानून मंत्री थे। भारत के संविधान के निर्माण व उसका प्रारूप तैयार करने में उनकी प्रमुख भूमिका थी। वे दलितों, पिछड़ों निर्धनों, व दुःखियों के मसीहा थे। उन्होंने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये जिनसे देश व समाज प्रभावित हुआ। वे चाहते थे कि समाज से असमानता, छुआछूत, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना समाप्त हो। सारा देश एक विचार, एक मत, धर्म-भाषा व जीवनशैली का अपनाए। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने भी अपने साहित्य व शंका-समाधान आदि में ऐसे ही विचार व्यक्त किये थे जिससे देश व विश्व का पूर्ण हित हो सकता है। हिन्दुओं की जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था के बारे में सन् 1875 के आसपास उन्होंने कहा था कि 'ये जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था आर्यों के लिए मरण व्यवस्था है। देखें इससे आर्यों (हिन्दुओं) का पीछा कब छूटता है? हम समझते हैं कि देश में यदि अस्पृश्यता न होती तो डॉ. अम्बेडकर देश व समाज के लिए और अधिक उपयोगी कार्य कर सकते थे। वह अपने जीवन में जितना कार्य कर सके। उसके आधार पर हम उन्हें न्यायविद्, राजनेता, दार्शनिक, इतिहासकार तथा अर्थ-शास्त्री आदि अनेक विशेषणों से युक्त महनीय पुरुष कह सकते हैं। लगभग 63 वर्ष की आयु में ही उन्होंने इतने कार्य किये जिससे उनका जीवन आदरणीय, श्रद्धा व युवकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गया।

राष्ट्रनायक डॉ. अम्बेडकर महू-मध्यप्रदेश में जन्मे थे। आप अपने पिता श्री रामजी सकपाल एवं माता श्रीमती भीम बाई की 14वीं व अन्तिम सन्तान थे अर्थात्, वे भाई बहिनों में

सबसे छोटे थे। तर्क व विज्ञान के आधार पर भी यही परिणाम निकलता है कि छोटी सन्तान सबसे अधिक मेधावी व योग्य होती है। आपका परिवार 'महर' जाति से सम्बन्धित निर्धन परिवार था तथा धार्मिक विचारधारा से आप कबीर पन्थी थे। पिता जी की प्रेरणा से आपने हिन्दू मत के शास्त्रों वर्ण-व्यवस्था व जाति प्रथा का अध्ययन किया। आपका परिवार महाराष्ट्र के रत्नागिरी जिले में रहने वाला था। पिता व परिवार के अन्य लोग ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में कार्यरत थे। आपको बचपन में शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उनके साथ जो भेद-भाव हुए, वे अनुचित व दुःखद थे, उन्हें अमानवीय की संज्ञा दे सकते हैं। महर्षि दयानन्द ने जिस गुरुकुलीय शिक्षा व्यवस्था को अध्ययन-अध्यापन के लिए प्रस्तुत किया उसमें उनका कहना था कि राजा का पुत्र हो या किसी निर्धन, दलित व पिछड़े परिवार का हो सबको समान आसन, समान भोजन, समान वस्त्र व अन्य सभी सुविधाएँ समान रूप में मिलनी चाहिए। यदि समानता न हो तो यह अधर्म है व अनुचित कार्य हैं। यह विचार उन्होंने सन् 1857 में व्यक्त किये व अपनी प्रसिद्ध पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में लिखे हैं। आर्य समाज के 1,500 से अधिक गुरुकुलों में इस व्यवस्था का पालन किया जाता रहा है। जिसका परिणाम है कि आज वेदों के अध्ययन पर पण्डित व ब्राह्मण वर्ग का एकाधिकार समाप्त हो गया और देश व समाज में दलित व पिछड़े वर्गों से सम्बन्धित वेदों के अनेक भाष्यकार, विद्वान् अध्यापक कार्यरत् हैं सन् 1894 में अम्बेडकर जी के पिता सेना से सेवानिवृत्त होकर परिवार सहित सतारा आकर रहने लगे। यहाँ दो वर्ष बाद आपकी माताजी का देहान्त हो गया। भीमराव जी इस समय मात्र 5 वर्ष के बालक थे। आपकी चाची ने आपका व अन्य भाई-बहिनों का पालन-पोषण किया। आप एक जन्मना-ब्राह्मण अध्यापक महादेव अम्बेडकर के प्रिय छात्र थे। उन्होंने आपके

नाम में अम्बावादेकर के स्थान पर अम्बेडकर कर दिया और यही शब्द स्कूल के अभिलेख में अंकित हो गया। यही शब्द जीवनपर्यन्त आपके नाम के साथ शोभायमान रहा। आपने कोलम्बिया विश्वविद्यालय एवं लन्दन के स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में अध्ययन किया और यहाँ से विधि, अर्थशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र में स्नातक हुए तथा इन विषयों में अध्ययन व अनुसंधान कर आप डाक्टरेट की उपाधि से अलंकृत हुए। आपने सन् 1918 में मुम्बई के College of Commerce & Economics में राजनीति एवं अर्थशास्त्र का अध्यापन भी किया। आपके अध्यापन से आपके छात्र अत्यन्त प्रभावित थे। सन् 1926 में आपने वकालत आरम्भ की व इसमें सफलता प्राप्त की। आपने 1920 में "मूक नायक" (Leader of the Silent) नामक एक पत्र प्रकाशित कर अस्पृश्यता निवारण के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान दिया। कोल्हापुर के महाराजा शाहूजी (1874-1922) ने आपके इस कार्य व अन्य गतिविधियों में आर्थिक सहयोग प्रदान किया। यह ज्ञातव्य है कि शाहूजी आर्य विचारधारा के अनुयायी थे।

अर्थशास्त्र पर आपने तीन पुस्तकें लिखीं जिनके नाम हैं- Administration & Finance of the East India Company, The Evolution of Provincial Finance British India and the The Problem of Rupee-Its origin and its solution. रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया सन् 1934 में स्थापित हुआ जो कि डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं कल्पनाओं पर आधारित था। इसके लिए उन्होंने आवश्यक सुझाव आदि Hilton Young Commission को दिये थे। डॉ. अम्बेडकर जी की भारतीय संविधान के निर्माण में प्रमुख भूमिका थी। वह पहले कानून मंत्री थे। उन्होंने काश्मीर से सम्बंधित विशेष दर्जा देने वाली धारा 370 का खुल कर विरोध किया था। नेहरुजी भी उनको मना नहीं पाये थे। इससे उनके व्यक्तित्व की दृढ़ता का अनुमान होता है। इन्होंने

अस्पृश्यता का विरोध किया। यह एक अमानवीय सामाजिक कुप्रथा थी जिसका महर्षि दयानन्द सहित अनेक महापुरुषों ने भी विरोध किया। खेद है कि आज भी समाज में इसके दर्शन होते हैं। यह कैसा वैज्ञानिक युग है, जब यह अमानवीय कुप्रथा आज भी जारी है। आशा है आधुनिक शिक्षित युवा पीढ़ी इसे आने वाले समय में समाप्त कर देगी।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सामाजिक विषमता के विरुद्ध आन्दोलन किया और 'अहिंसा परमो धर्मः' को प्रधानता देने वाले बौद्धमत को ग्रहण किया। आपको 1990 में भारत रत्न की सर्वोपरि उपाधि प्रदान कर गौरवान्वित किया गया। आर्य समाज के शीर्षस्थ विद्वान् स्वामी विद्यानन्द सरस्वती आपके प्रशंसक थे। आप दोनों में परस्पर मधुर सम्बन्ध थे। पौराणिकों व आर्य समाज में जब कभी कुछ विषयों पर मतभेद हुआ तो आपने आर्य समाज के विचारों का समर्थन किया। डॉ. अम्बेडकर का सुश्री शारदा कबीर से विवाह हुआ था। आपके पुत्र श्री यशवन्त एवं पोते का नाम प्रकाश यशवन्त है। वह भारतीय संसद के दोनों सदनों के सदस्य रहे। डॉ. अम्बेडकर जी को मधुमेह रोग था। आप जून-अक्तूबर 1954 में गम्भीर रूप से रुग्ण हुए और बिस्तर पर ही रहे। इस रोग में आपकी आँखें भी प्रभावित हुईं और जिससे आप पढ़ लिख नहीं सकते थे। सन् 1955 में आपका स्वास्थ्य और अधिक गिर गया। इस प्रकार दिसम्बर 1956 की रात्रि को सोते हुए ही आपने नश्वर शरीर छोड़ दिया। 7 दिसम्बर 1956 को मुम्बई के दादर, चौपाटी में आपकी अन्त्येष्टि हुई। आपकी पत्नी की मृत्यु सन् 2003 में हुई।

आपके जीवन का सन्देश यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी शैक्षिक योग्यता बढ़ानी चाहिए। असत्य, पाखण्ड व कुरीतियों का विरोध करना चाहिए। देश व समाज के लिए जितना भी बन सके, उसकी उन्नति में अपना योगदान देना चाहिए। असत्य के आगे

झुकना नहीं चाहिए। उनके जन्म दिन पर सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि देश व समाज से सामाजिक असमानता, छुआछूत, अस्पृस्यता, ऊँच-नीच की भावना, छोटे-बड़े का अन्तर पूर्णतया समाप्त हो। जब तक यह असमानता विद्यामान है, यह नहीं कहा जा सकता कि देश उन्नति कर रहा है। वेद मानव को परमात्मा प्रदत्त ज्ञान है। उस में कहा गया है कि सभी मनुष्य ईश्वर के पुत्र व पुत्रियाँ है, कोई छोटा-बड़ा नहीं है। वेदों का संदेश है कि सभी मनुष्यों को अपनीं ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। यदि सभी लोग वेदों का स्वाध्याय कर अपने कर्तव्य का निर्वाह करें तो समाज श्रेष्ठ बन सकता है। सामाजिक विषमता व असमानताओं से रहित समाज बना कर ही हम डॉ. भीमराव अम्बेडकर को सच्ची श्रद्धांजलि दे सकते हैं। श्री अम्बेडकर जी को हमारा नमन!

196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001,
फोन : 09412985121

योग शिविर का आयोजन

आनंदधाम उधमपुर में दिनांक 17 अप्रैल 2016 से 24 अप्रैल 2016 तक योग शिविर का आयोजन किया जा रहा है। इस शिविर में महात्मा भगवान देव चैतन्य, आचार्य संदीप आर्य व अन्य विद्वद्जनों का मार्गदर्शन प्राप्त होगा। 17 अप्रैल सायं 4 बजे तक शिविर स्थल पर अवश्य पहुँच जावें। इच्छुक शिविरार्थी अपने पंजीकरण एवं विस्तृत जानकारी हेतु संपर्क करें।

भारतभूषण आनंद
व्यवस्थापक
मो. 941907788
anandhamudhampur@gmail.com

समिधाएँ तीन – मंत्र चार

–मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति

आर्यसमाज के कतिपय कर्मकाण्डी विद्वान् देव यज्ञ के अन्तर्गत **'अग्नि समिन्धनम्'** में समिदाधान के समय चार मंत्रों से तीन समिधाएँ श्रद्धासहित अग्नि में भेंट करने की विधि में एक प्रश्न पूछते हैं। प्रथम मंत्र –ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा–समेधय स्वाहा को अमान्य करने का कारण वे कहते हैं कि आश्वलायन गृह्यसूत्र 1/10/92 का वचन होने से यह वेदमंत्र नहीं है अतः इससे प्रथम समिधादान नहीं होना चाहिए। शेष 3 मंत्रों से ही 3 समिधाएँ रखने को महत्त्व देते हैं।

इस कर्मकाण्ड प्रधानविधि में वस्तुतः कौन–सी विधि शास्त्रोक्त है? यहाँ हम आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् पं. युधिष्ठिर जी मीमांसक का पक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं।

आर्य विद्वानों से इस सम्बन्ध में उनके अभिमत सादर आमंत्रित हैं।

समिधादान–मंत्रों के संबंध में

संस्कार–विधि में 3 समिधाओं के लिए 4 मंत्रों का विधान मिलता है। संस्कार–विधि की शुद्ध प्रतिलिपि (प्रेस कॉपी) में पहले 3 ही समिधादान के मंत्र थे। उसी प्रतिलिपि में **'अयन्त इध्म आत्मा' मंत्र** हाशिये पर बढ़ाया गया और 3 मंत्रों की दृष्टि से पूर्व लिखे गये आहुति–प्रदान संबंधी भाषा के लेख में भी परिवर्तन किया गया। मंत्र का लेखक अन्य व्यक्ति हैं, परन्तु 3 मंत्र–संबंधी पूर्व भाषा–पाठ को 4 मंत्रों के साथ सम्बद्ध करने के लिए जो भाषा–पाठ में परिवर्तन किया गया, वह ऋषि दयानन्द के हाथ का है। इससे यह स्पष्ट है कि **'अयन्त'** मंत्र का परिवर्धन उनके आदेशानुसार किया गया था। अतः जो व्यक्ति 'अयन्त इध्म आत्मा' को प्रक्षेप मानते हैं, वह अयुक्त है। अस्तु–

इस स्थिति में होते हुए भी 2 विचारणीय प्रश्न उत्पन्न होते हैं।

1. क्या 4 मंत्रों में 3 समिधाओं का आधान शास्त्र–सम्मत है?

2. क्या 'समिधाग्निं' मंत्र से समित् का प्रक्षेप न करते हुए भी मंत्र में 'स्वाहा। 'इदमग्नये इदं न मम' का उच्चारण करना चाहिए?

हम इन दोनों प्रश्नों का अपने शास्त्रीय ज्ञान के अनुसार क्रमशः उत्तर देते हैं-

1. तीन समिधाओं के प्रक्षेप में 4 मंत्रों का प्रयोग शास्त्र-सम्मत है, परन्तु उनमें 3 से समिधा का प्रक्षेप होता है, और एक मंत्र का जाप होता है।

यजुर्वेद में समिदाधान के प्रकरण में (अ. 3 मं. 1-4) चार मंत्र हैं-

समिधाग्निम्, सुसमिद्धाय, तन्त्वा समिद्भिर, उप त्वा अग्ने।'

इस प्रकरण में कात्यायन मुनि ने अपने श्रौत सूत्र (4/5/34-35) में लिखा है-

तिस्रः समिधो घृताक्ता आदधाति समिधाग्निमिति प्रत्यूचम्। उपत्वेति जपति। द्वितीयां वा।

इनका भाव यह है कि घृत से सनी हुई 3 समिधाओं का आधान करना है। 'समिधाग्नि' आदि में प्रति ऋचा। उप त्वा चौथे मंत्र को जपता है। अथवा द्वितीय 'सुसमिद्धाय' मंत्र को जपता है। 'उपत्वा' से समिधा का आधान करता है।

कात्यायन श्रौतसूत्र के इस प्रकरण के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि 4 मंत्रों की उपस्थिति होने पर 3 से समिधा का आधान और 'समिधाग्नि' मंत्र का आधान के अभाव में जप होना चाहिए। इस प्रकार ऋषि दयानन्द का लेख शास्त्रविरुद्ध नहीं है, यह स्पष्ट हो जाता है।

2. उपर्युक्त व्यवस्था स्वीकार करने पर 'समिधाग्निं' मंत्र जप मंत्र होगा। संस्कार विधि के अनुसार भी इनमें समिधा का आधान नहीं होता है। अतः प्रश्न रहता है 'स्वाहा। इदमग्नये इदं न मम' बोलें या न बोलें। उपर्युक्त शास्त्रीय पक्ष के अनुसार 'स्वाहा' आदि का उच्चारण नहीं होना चाहिए, क्योंकि जब तक किसी वस्तु का प्रक्षेप न किया जाये, स्वाहा का उच्चारण नहीं होता है। (स्मरणीय है कि यजुर्वेद में दो प्रकार

के मंत्र हैं। 1. कुछ में स्वाहा पद मंत्र का अवयव है तो 2. कुछ में स्वाहा के बिना मंत्र का पाठ है। जिन मंत्रों में 'स्वाहा' मंत्र का अवयव होता है। जैसे संध्या में चित्रं देवानाम् उपस्थान मंत्र के स्वाहान्त होने में संध्या में बिना आहुति के भी बोला जाता है। परन्तु जिसमें 'स्वाहा' नहीं बोला जाता है। (पाद टिप्पणी पृ.293-214)

जब स्वाहा में कुछ द्रव्य आहुत ही नहीं हुआ तो 'इदमग्नये इदं न मम' रूप का त्याग किया जायेगा! अतः 'समिधाग्निम्' मंत्र के साथ छपा हुआ स्वाहा आदि अंश नहीं बोलना चाहिए। यदि कहो कि ऋषि दयानन्द ने क्यों लिखा है? इसका समाधान यह है कि 'अयन्त इध्म' मंत्र के परिवर्धन से भाषा में जो परिवर्तन करना था, वह ऋषि दयानन्द ने कर दिया, शेष छूट गया। हमने ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों के आधार पर उनके ग्रंथों का जो विस्तृत सम्पादन कार्य किया है, उसमें कुछ प्रमुख भाग में ऋषि दयानन्द ने परिवर्तन कर दिया और नये परिवर्तन के अनुसार शेष जो परिवर्तन करने थे, वे छूट गये। इसका प्रधान कारण हमारे विचार में यह है कि ऋषि दयानन्द ने सोचा होगा कि मेरे किए गये परिवर्तन के अनुसार शेष भाग को निकालने या परिवर्तन करने का कार्य भीमसेन आदि सहयोगी स्वयं कर लेंगे, परन्तु पं. भीमसेन आदि ने अपनी पूरी जिम्मेदारी नहीं निभाई। इस कारण ऋषि दयानन्द के ग्रंथों में भूलें उत्पन्न हो गईं। हम तो ऐसी भूलों को 'क्लेरिकल मिस्टेक-लिपिकों व सहायको की अनवधानता से उत्पन्न मानते हैं। यतः हमें ऋषि दयानन्द के हस्तेलखों के अनुसार अनेक ग्रंथों के संपादन का कार्य करना पड़ा।

इतने पर भी जो व्यक्ति ऋषि दयानन्द के प्रति अति श्रद्धावश 'स्वाहा इदमग्नये इदं न मम' बोलना चाहें तो बोलें, परन्तु यह मिथ्याचार के ही अन्तर्गत आएगा। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है-प्रातः प्रातस्ते अनृतं वदन्ति ये पुरोदयाज्जुह्वत्यग्निहोत्रम्। अर्थात् जो लोग सूर्योदय से पूर्व 'सूर्यो ज्योतिः' आदि मंत्र पढ़कर अग्निहोत्र करते है, वे सवेरे-सवेरे झूठ बोलते हैं,

क्योंकि सूर्य ज्योति उस समय होती ही नहीं है।

ऋषि के लेख की पुष्टि जिस प्रकार हो सकती है, उसका हमने उल्लेख कर दिया। परन्तु हमें कात्यायन मुनि के 'द्वितीयां जपति' सुसमिद्धाय' मंत्र का जप करता है, लेख पर और ऋषि दयानन्द के मतानुसार 'समिधाग्नि' मंत्र के जप पक्ष में भी कुछ अनौचित्य सा प्रतीत होता है। वह इस प्रकार है-

इस अधिदैविक जगत में तीनों लोकों में तीन प्रकार की अग्नियाँ हैं। वैदिक परिभाषा में पृथिवीस्थ अग्नि को सामान्य अग्नि नाम से कहते हैं। अन्तरिक्षस्थ अग्नि जातवेदाः कहाती है और द्युलोकस्थ अग्नि आंगिरस। यजुर्वेद के मंत्रपाठ-क्रम में ये तीनों भेद यथास्थान माने जाते हैं, परन्तु 4 मंत्रों के प्रयोग में यह वैज्ञानिक वैदिक क्रम भंग हो जाता है। कात्यायन के द्वितीयां जपति पक्ष में प्रथम आहुति मंत्र (पृथिवी स्थानीय) की होती है। दूसरी अंगिरस् अग्नि अन्तरिक्ष लोकस्थ अग्नि के लिए होगी, जो क्रमभेद से दूषित है। तृतीय आहुति के उप त्वा मंत्र में सामान्य अग्नि का निर्देश है, उससे द्युलोकस्थ अग्नि के लिए आहुति दी जायेगी। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के लेखानुसार 'अयन्त इध्म' मंत्र से 'जातवेदाः' अग्नि की आहुति पृथिवी लोकस्थ अग्नि के लिए होगी। द्वितीय आहुति के मंत्र 'सुसमिद्धाय' की भी 'जातवेदाः' अग्नि के लिए होगी। पृ.212-215

इस प्रकार जहाँ लोकक्रम से नियत अग्नि क्रम में वैपरीत्य होता है, वहाँ एक ही देवता के लिए 2 आहुतियाँ होने से 'जामित्व' दोष भी आता है।

द्रष्टव्य-वैदिक-नित्यकर्म-विधि, लेखक पं. युधिष्ठिर मीमांसक, प्राप्ति स्थान-रामलाल कपूर ट्रस्ट, रेवली (सोनीपत, हरियाणा)

सुकिरण, अ/13, सुदामा नगर,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

Royal Monk

(Its Vivekananda's 153th birth Anniversary this year)

-Amrita Saraogi

Have you ever wondered why Swami Vivekananda is usually seen in his images dressed more like a maharaja in saffron, than a sanyasi? The majestic turban and robe are in fact, so inseparable from the image of the Swami that most people, perhaps, would not recongnise the great Indian monk without them. But what is much less known is that both his famous attire and his name Vivekananda were not bestowed to the Swami by his Guru, as convention would dictate, but instead by a disciple –Maharaja Ajit Singh of Khetri in erstwhile Rajputana inJhunjhunu distirict, Shekhawati–the man Swamiji claimed was his "only friend on Earth".

Meeting The Maharaja

Khetri was known for its enlightened rulers who were pioneers in various fields. Incidentally, it was also the place where Rajasthan's first branch of the Brahmo Samaj, the new brand of reformist Hinduism established by prolific Bengali Social reformers of the time, was established in 1886, five years before the Swami's first visit to Khetri.

As a young 28-year old wandering monk on a pigrimage to understand his motherland and discover his vision in life, Swamji travelled to Rajasthan as well. It was in Maharaja Ajit Singh's summer palace in Mt. Abu that they first met. The Maharaja's first question to Swamiji was, "What is Life"? to which Swamiji replied, "Life is the unfolding and development of a being under circumstances tending to press it down." The Swami spent five months with the Maharaja, who was perhaps his age, and accompanied him to Khetri.

The Maharaja dedicated himself to Swamiji as a benefector, disciple, and philosopher-friend. He provided him with not just the means to fulfil his grand vision, but also the all-important gift of a lasting friendship. The Swami, in one of his letters, went to the extent of saying that "I have not the least shame in opening my mind to you", and could indeed, because of the Maharaja's "steadiness of purpose", as he himself said, depend on him at any time.

The two conversed mostly in English, and sometimes, interestingly, in Sanskrit too. They not only conversed, but partici-

pated in hunting expeditions and musical sessions where the Swami sang and the Maharaja, also a skilled Veena player, accompanied him on the harmonium.

Once, upon learning that the Swami was uncomfortable with the heat, the Maharaja advised him to wear the turban, and taught him how to wind it –an art that the Swami soon mastered and took away with him as a prominent Rajasthani custom he adopted. Swamiji assumed that name of Vivekananda for good at the suggestion of the Maharaja, just before leaving for America. He previously roamed about India assuming various 'monastic' names such as Sachchidananda or Vividishananda–successfully fulfilling his aim of breaking all ties by concealing his identity.

Swamji would say, "As for Rajaji, his love for me is simply without limit." Interestingly, althought he formally initiated the Maharaja as his spiritual disciple, Swamiji gave him lessons not just in the deepest philosophy of Vedanta, but also in material sciences such as physics and chemistry, for which a special lab was constructed. He also gave him lessons in law,and even astronomy.

Swamiji's discourses to the Maharaja carried on even while he was away through lengthy letters. In one such letter, he writes, "And when I think of you, Raja Ajit Singh.....I cannot help believing in the glorious renaissance of the religion eternal, when such hands are willing to rebuild it again. "And the Maharaja...... would rise in the middle of the night to carry out the humbling services of a devotee, pressing his feet, or fanning him, despite the Swamiji's fervent protests.

Once, the Maharaja, celebrating the birth of a son born with his guru, Swamiji's blessings, had arranged a nautch (dance) performance one evening, and requested the Swami to join him, who, being a monk, felt it inappropriate and refused. The nautch singer was deeply hurt by this dismissal, and cried loud in agony, a devotional Surdas song that matched her emotions perfectly, elaborating to the Swami how the Lord sees all with the same-sighted vision. The Swami, touched profoundly by this deep vedantic insight of oneness, joined the party, and later recollected how this incident "removed the scales from (his) eyes".

Benevolent Benefactor

At the World Parliament of Religions in Chicago, 1893, Swamiji was claimed by The New York Herald to be the most renowed philosopher of the time. It was Ajit Singh's contribution that was a prominent source of funding for Swamiji's first historic trip to America..... The Maharaja provided Swamiji with resources not only for his own work, but also a fixed monthly amount for the upkeep of his widowed mother and younger brothers....

Maharaja's support indeed continued lifelong, and he also provided Swamiji with a large sum of money towards establishing his visionary project, the Belur Math. As Swamiji articulated lucidly in a letter to Jagmohanlal, "Certain men are born in certain periods to perform certain actions in combination. Ajit Singh and myself are two such souls – born to help each other in a big work for the good of mankind....... We are as supplement and complement."

One of the most captivating illustrations of the Swami's teachings also happened to take place in Rajasthan, in Alwar, in the presence of its anglicised Maharaja, Mangal Singh. When the Maharaja proclaimed that he did not believe in image worship.

Swamiji indeed left deep impressions on some other significant Rajasthanis, too. One of them was Har Bilas Sarda, who went on to become a renowed historian, and also championed the Child Marriage Restraint Act, popularly known as the 'Sarda Act' as a member of the Central Legislative Assembly of India. And the only disciple to have been formally ordained by Swamiji's guru, Sri Ramakrishna was Narayan Shastri, also from Rajasthan.

Swamiji was inspired by Colonel Tod's famous account, Annals and Antiquities of Rajasthan, and quoted the tales of Rajput bravery extensively from it, to inspire his listeners, including Americans.

In order to celebrate Swamiji's birth anniversary, and as an attempt to keep their relationship intact and evergrowing, the Ramakrishna Mission's centre in Khetri, housed in the Maharaja's palace, Fateh Bilas, renamed as 'Vivekananda Smriti Mandir', is at the moment trying to restrengthen its roots by refurbishing this historical heritage property.

Date of Pubn. : 29.02.2016 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 March. 2016
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेघामयाशिषं स्वाहा।।(यजु. 32/13)

ऋषि – मेधाकामः, देवता–इन्द्रः, छन्द–भुरिग्गायत्री

अर्थ–सर्वशक्तिमान् परमेश्वर जो अद्भुत है, सबका प्रिय और स्वभाव से सबका कमनीय है। सभी जीवात्मा जिसे पाना चाहते हैं। उसी को हम न्यायकारी सभापति मानें। आप सब जीवों के सम्यक् भजनीय और सेव्य हैं। हे भगवान् आप हमें धारणवती बुद्धि प्रदान कीजिए। यही मेरी वाणी कहती है कि ईश्वर के बिना कोई जीवों का सेव्य नहीं है। ऐसी वेद की आज्ञा है जिसे सभी को मानना चाहिए।

We beg from the Almightly God, the possessor of marvelous power. The most Lovable by His nature. He is the Most Longed for by the soul's, who in reality is the President of our ruling assembly and is thus the Most Worthy of being resorted to by all creatures-a discriminating power. This is our hearties desire which has been given vent to here.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58